International Journal of Applied Research 2019; 5(6): 434-435

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(6): 434-435
www.allresearchjournal.com
Received: 24-04-2019
Accepted: 28-05-2019

डॉ. तीर्थानन्द मिश्र
एसोसियेट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान, भारत

Correspondence
डॉ. तीर्थानन्द मिश्र
एसोसियेट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान, भारत

चम्पूकाव्यम्

डॉ. तीर्थानन्द मिश्र

प्रस्तावना

'चम्पू' शब्द की व्युत्पत्ति चुरादिगणीय चपि गतौ धातु से 'उ' प्रत्यय जोड़कर 'चम्पयति चम्पति इति वा' की जाती है। किन्तु इस व्युत्पत्ति से जिस रचना के लिए 'चम्पू' शब्द व्यवहृत होता है वहाँ पर व्युत्पत्ति सरलता से नहीं पहुँच पाती है। गति के गमन, ज्ञान, मोक्ष तथा प्राप्ति ये चार अर्थ होते हैं। इस आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 'चम्पू' उस रचना को कहते हैं जो मोक्ष सहोदर आनन्द प्राप्त कराये, किन्तु इस तरह का आनन्द प्रदान करने की क्षमता हर किसी भी काव्य में होने से उपर्युक्त व्युत्पत्ति से काव्य की कोई विशेष धारा लक्षित नहीं की जा सकती।

इसी अभिप्राय से हरिदास भट्टाचार्य ने 'चम्पू' की व्याख्या करते हुए लिखा है – चमत्कृत्य पुनाति सहृदयान् विस्मयीकृत्य प्रसादयति इति चम्पूः।[1] हरिदासकृत् यही व्युत्पत्ति चम्पूकाव्य की दृष्टि से अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है क्योंकि वास्तव में चम्पूकाव्य चमत्कार प्रधान हुआ करते हैं, जहाँ चमत्कार का अर्थ उक्तिवक्रता व शाब्दी क्रीड़ा से है। विविध चम्पूकाव्यों के अनुशीलन से यह ज्ञात होता हैं कि इस प्रकार के काव्य में काव्यकारों का ध्यान रस एवं औचित्य की अपेक्षा पाण्डित्य प्रदर्शन पर विशेष रहा है।

चम्पूकाव्य की परिभाषा – विभिन्न आचार्यों ने चम्पू शब्द को एक पारिभाषिक शब्द मानकर अपना मन्तव्य निम्न रूप में प्रस्तुत किया है। महाकवि दण्डी चम्पूकाव्य का सर्वप्रथम लक्षण करते हुए लिखते हैं –

> गद्यमद्यमयी काचित् चम्पूरित्यभिधीयते।[2]

लक्षणरस्थ 'काचित्' तथा अभिधीयते पद के प्रयोग से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने गद्य पद्य के मिश्रित स्वरूप से युक्त चम्पू काव्य की सत्ता मात्र स्वीकार की है। दण्डी के अनन्तर जिन आचार्यों ने भी चम्पूकाव्य को परिभाषित करने का प्रयास किया है उन सभी ने प्रायशः दण्डी के लक्षण को ही अपने शब्दों में अभिव्यक्त किया है। इसी क्रम में हेमचन्द्र और वाग्भट ने अपने ग्रन्थ 'काव्यानुशासन' में 'चम्पूकाव्य' का लक्षण करते हुए लिखा है –

> गद्यपद्यमयी साङ्का सोच्छ्वासा चम्पूः।[3]

दण्डी के लक्षण से अतिरिक्त इन्होंने साङ्कत्व तथा 'सोच्छ्वासत्व' नामक दो विशेषताओं को चम्पूकाव्य के लिए आवश्यक तत्व के रूप में स्वीकार किया है।

गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते यथा देशराजचरितम्।[4] लिखते हुए विश्वनाथ कविराज ने दण्डी के लक्षण का ही समर्थन किया है। चम्पूकाव्य को परिभाषित करने वाली एक अज्ञात विद्वान् की परिभाषा भी मिलती है, जिसमें 'उक्ति–प्रत्युक्ति' और विष्कम्भक का न होना भी चम्पूकाव्य की विशेषताओं में सम्मिलित कर लिया गया है –

> गद्यपद्यमयी साङ्का सोच्छ्वासा कविगुम्फिता।
> उक्ति प्रत्युक्तिविष्कम्भकशून्या चम्पूरूदाहृता।।[5]

विविध आचार्यों द्वारा प्रस्तुत उक्त लक्षणों पर विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि चम्पूकाव्य विषयक उक्त सभी परिभाषाएँ उसके बाह्य स्वरूप का ही निरूपण करती हैं।

उसके अन्तः विश्लेषण की ओर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया। वस्तुतः काव्य के रूप में चम्पूकाव्य को परवर्ती मध्यकाल में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। इसी कारण यह विस्तृत विवेचन का विषय नहीं बन सका और इसकी मिश्र शैली का उल्लेखमात्र करके इसकी उपेक्षा कर दी गई। सर्वप्रथम अग्निपुराणकार ने मिश्रं वपुरितिख्यातं प्रकीर्णमिति च द्विधा।[6] इस रूप में 'ख्यात' तथा 'प्रकीर्ण' नामक दो भेदों का उल्लेख कर चम्पूकाव्य की प्राण प्रतिष्ठा करने का कार्य किया। दण्डी द्वारा प्रस्तुत लक्षण में प्रयुक्त 'काचित्' तथा 'अभिधीयते' ये दो पद इस साहित्य के प्रति जनसाधारण की उपेक्षाभाव के द्योतक हैं। हेमचन्द्र एवं वाग्भट ने 'साङ्क' एवं 'सोच्छ्वास' नामक जिन दो विशेषताओं का उल्लेख किया है, वे विशेषताएँ उपलब्ध समस्त चम्पूकाव्य पर घटित न होने के कारण अव्याप्ति नामक दोष से दूषित सिद्ध होता है। अज्ञात विद्वान द्वारा 'गद्यपद्यमयी' इत्यादि रूप में दी गई चम्पूकाव्य विषयक परिभाषा भी उचित नहीं है, क्योंकि जहाँ तक 'उक्तिप्रत्युक्तिशून्य' का प्रश्न है, अत्यन्त प्रसिद्ध 'विश्वगुणादर्श' नामक चम्पूकाव्य अपने दो प्रमुख पात्रों 'कृशानु' और 'विश्वावसु' की उक्तिप्रत्युक्ति पर ही निर्मित है। इसी प्रकार 'गद्यमद्यमयता' भी चम्पूकाव्य के सन्दर्भ में युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि यह विशेषता 'अतिव्याप्ति' नामक दोष से दूषित है। चम्पूकाव्य के 'श्रव्यकाव्य' होने के कारण 'दृश्यकाव्य' विषयक विष्कम्भक के प्रयोग का प्रश्न ही नहीं उपस्थित होता है।

इस तरह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि दण्डी आदि आलङ्कारिकों द्वारा प्रस्तुत लक्षणों में से एक भी लक्षण चम्पूकाव्य के समस्त असाधारण धर्म को लक्षित कर पाने में समर्थ नहीं है। इतना ही नहीं उक्त लक्षण चम्पूकाव्य में प्रायशः उपलब्ध 'प्रकन्धात्मकता' नामक भेदक धर्म को भी समाहित करने में असमर्थ है। 'प्रबन्धात्मकता' वही धर्म है जिसके आधार पर 'चम्पूकाव्य' को मिश्रशैली में निबद्ध मुक्तक रचनाओं से पृथक् किया जाता है। अतः अन्तः एवं बाह्य साक्ष्य के आधार पर चम्पूकाव्य की विशेषताओं का अन्वेषण करना अपरिहार्य मानकर चम्पूकाव्यकारों की दृष्टि में चम्पूकाव्य के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है।

विभिन्न चम्पूकाव्यकारों के मन्तव्यों का सूक्ष्मतया अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने चम्पूकाव्य का निर्माण ग़द्य अथवा पद्यकाव्य के सृजन की अक्षमता के कारण नहीं वरन् उस समय प्रचलित विभिन्न शैलियों से पृथक् एवं उनसे अधिक मनोहर शैली को जन्म देने के उद्देश्य से किया है। वे यह अनुभव करते हैं कि गद्य व पद्य से पृथक्–पृथक् प्राप्त होने वाले आनन्द की एक रसता तभी समाप्त हो सकती जब दोनों को एकत्र समन्वित कर दिया जाय। इसी समन्वित आनन्ददान के उद्देश्य से उनके द्वारा चम्पूकाव्यों का निर्माण हुआ है। प्रख्यात चम्पूकाव्यकार हरिचन्द्र का मन्तव्य दृष्टव्य है –

गद्यावली पद्य परम्परा च प्रत्येकमप्यावहति प्रमोदम्।
हर्षप्रकर्षं तनुते मिलित्वा द्राग् बाल्यतारूण्यवतीव कन्या।।[7]

अर्थात् केवल गद्यमय अथवा पद्यमय काव्य भी यद्यपि सहृदय सामाजिकों को अपनी ओर आकृष्ट करती हैं तथापि इन दोनों के मिश्रण से काव्य में उत्पन्न चारूता उसी प्रकार हृदय को अधिक आह्लादित करती है जिस तरह बाल्य एवं तारूण्य के मध्य में अवस्थित कन्या।

चम्पूकाव्यकारों की यह धारणा थी कि जहाँ गद्य रचना में जटिलता, समास, बहुलता एवं दुरूहता के कारण रसप्रवाह अवरूद्ध सा अनुभव किया जाता है, वहाँ यदि मध्य में पद्यों का निवेश कर दिया जाय तो वह अधिक हृदयावर्जक हो जायेगा। इसी प्रकार पद्यात्मक महाकाव्यों में प्रवाहित होने वाली रसधारा के तारतम्य को जोड़ने वाले तथा कथावस्तु को आगे बढ़ाने वाले उन अंशों को यदि गद्यात्मक शैली में निबद्ध किया जाय तो निःसन्देह वह अधिक रमणीय एवं मनोहारी होगा। चम्पू साहित्य के इसी महत्व को ध्यान में रखकर चम्पूकार शरभोजि ने अपना मन्तव्य निम्न पद्य में प्रकट किया है –

पद्यं हृद्यमपीह लोके धत्ते न हृदयास्पदं
गद्यं पद्यविवर्जितं च भजते नास्वाद्यतां मानसे।
साहित्यं हि तयोर्द्वयोरपि सुधामाध्वीकयोर्योगवत्
सन्तोषं हृदयाम्बुजे वितनुते साहित्यविद्याविदाम्।।[8]

अर्थात् पद्य सुन्दर होने पर भी गद्य के बिना हृदयावर्जक नहीं होता है, इसी प्रकार पद्य रहित गद्य भी आनन्दप्रद नहीं होता है। इन दोनों से समन्वित साहित्य ही सुधा माध्वीक के मिश्रण की भाँति साहित्य विद्या विचक्षण सहृदयों के हृदय कमल को विकसित करता है। चम्पू साहित्य की इन्हीं विशेषताओं को प्रसिद्ध चम्पूकाव्यकार वेंकटाध्वरी ने निम्न शब्दों में प्रकट किया है –

पद्यं यद्यपि विधत्ते बहुसतां हृद्यं विगद्यं न तत्
गद्यं न प्रतिपद्यते न विजहत्पद्यं बुधास्वाद्यताम्।
आदन्ते हितयोः प्रयोग उभयोरामोदभूमोदयं
संगः कस्य हि न स्वदेत मनसे माध्वीकमृद्वीकयोः।।[9]

उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट होता है कि गद्यमद्यमयात्मक उस प्रबन्ध काव्य को चम्पूकाव्य कहते हैं जो एकत्र सुधा–माध्वीक की भाँति सहृदयों के हृदय कमल को विकसित करने में सक्षम होता है। चम्पूकाव्य निर्माताओं की दृष्टि में गद्य–पद्य का मिश्रण काव्य में ऐसी समरसता उत्पन्न करता है जो केवल गद्य या पद्यकाव्य में नहीं मिलता है।

सन्दर्भ

1. चम्पूकाव्यों का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, डॉ. छविनाथ त्रिपाठी, पृ. 27।
2. कव्यादश, 1-31.
3. काव्यानुशासन, 8-9.
4. साहित्यदर्पण, 6-336.
5. डॉ. सूर्यकान्त सम्पादित नृसिंह चम्पू की भूमिका
6. अग्निपुराण, 337-38.
7. जीवन्धरचम्पू, 1-9.
8. कुमारसम्भवचम्पू, 1-6.
9. विश्वगुणादर्श चम्पू, 1-4.